छोटे किसानों का सवाल : विभ्रम और यथार्थ

भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन में कृषि प्रश्न से सम्बन्धित कई अन्य सवालों की तरह ही छोटे किसानों के सवाल पर भी विभ्रम मौजूद हैं। ये विभ्रम नव जनवादी क्रांति की मंजिल को स्वीकार करने वाले कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों में भी मौजूद है और समाजवादी क्रांति की मंजिल को मानने वाले संगठनों में भी। छोटे किसानों की वर्गीय स्थिति, उनकी तबाही बर्बादी के वर्तमान कारण और क्रांति में उनकी भूमिका इत्यादि सवालों पर ये विभ्रम बहुत साफ तौर पर दिखाई देते हैं। नव जनवादी क्रांति की लाइन को मानने वाले संगठनों के अनुसार भारतीय कृषि में अभी भी अ(सामन्ती उत्पादन सम्बन्ध है। मुख्यतः इन्हीं सम्बन्धों के कारण आज छोटे मझोले किसान तबाह हो रहे हैं। इसका समाधान वे जमींदारों और धार्मिक संस्थाओं की संपूर्ण जमीन को जब्त करके उसे 'जमीन जोतने वाले की' के नारे के आधार पर भूमिहीन–गरीब किसानों और खेत मजदूरों में बांट कर करेंगे। इस लेख के जरिये हम यह दिखाने की कोशिश करेंगे कि विभिन्न कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों की छोटे किसानों के सम्बन्ध में क्या समझदारी है और कैसे यह यथार्थ से बेमेल है। साथ ही हम यह स्थापित करेंगे कि छोटे किसानों के सम्बन्ध में सर्वहारा दृष्टिकोण क्या होना चाहिए।

I

'' ... हमारा मुख्य उद्देश्य है विभिन्न सामाजिक वर्गों की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति को समझना। प्रत्येक वर्ग की वर्तमान स्थिति और इसके विकास के चढ़ावों–उतारों की एक तस्वीर हमारी जांच–पड़ताल का नतीजा होना चाहिए।...''

और आगे,

'' हमें केवल विभिन्न व्यापारों के बीच के सम्बन्धों की ही नहीं, बल्कि और, अधिक विशेष रूप से विभिन्न वर्गों के बीच के सम्बन्धों की जांच पड़ताल करनी चाहिए। हमारी जांच पड़ताल की मुख्य प(ति विभिन्न सामाजिक वर्गों को ***अलग–अलग बांटकर*** समझने की होनी चाहिए और अंतिम उद्देश्य ***उनके अन्तरसंबंधों*** को जानना होना चाहिए ताकि वर्ग शक्तियों के सही मूल्यांकन तक पहुंचा जा सके और तब, यह परिभाषित करते हुए कि कौन से वर्ग क्रांतिकारी संघर्ष की मुख्य शक्ति हैं, किन वर्गों को संश्रयकारी के रूप में अपने पक्ष में लाना है और किन वर्गों की सत्ता उखाड़ फेंकनी है, संघर्ष के लिए सही रणकौशल सूत्रब(किये जा सकें। यही हमारा अकेला उद्देश्य है।''... (माओ, पुस्तक पूजा का विरोध करो, प्रतिनिधि चयन एक खंड में, राहुल फाउन्डेशन, शब्दों पर जोर हमारा)

अफसोस! कि हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी माओ का यह दृष्टिकोण नहीं अपना रहे हैं। हमारे देश की कुल आबादी का **72**: हिस्सा (**2001** की जनगणना के अनुसार) देहातों में रहता है। देश की कुल कामगार आबादी का 58% हिस्सा (लगभग **23.4** करोड़) कृषि कार्यों में लगा हुआ है। देहातों में रहना और कृषि कार्यों में लगा होना, इसी प्रकार कृषि कार्यों में लगा होना और किसान होना बिल्कुल अलग–अलग बातें हैं। कृषि कार्यों से सम्ब(यह **23.4** करोड़ आबादी समांग नहीं है, यह वर्गों में विभेदित है। हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आंदोलन के साहित्य में यह फर्क बहुत धुंधला है। 'किसानों' की दुर्दशा का वर्णन करते समय तो अक्सर ही यह फर्क गायब होता है। किसानों के एक समुदाय के खिलाफ जमींदारों का पूरा वर्ग। इस किसान आबादी के बीच वर्ग विभेद क्या है, अलग–अलग वर्गों की अपनी विशिष्ट मांगें क्या हैं, उन्हें किन अलग–अलग मुद्दों पर संघर्ष के दौरान सर्वहारा नेतृत्व के मातहत लाया जा सकता है, क्रांति उपरांत अलग–अलग वर्गों को क्या हासिल होगा इत्यादि मामलों पर बात करते समय किसान आबादी के बीच वर्ग विभेद का ध्यान नहीं रखा जाता है। अपने गलत ेम वर्क के हिसाब से कुछ सामान्य बातें घालमेल के साथ बार–बार दुहराई जाती हैं। मसलन जमींदारों की जमीनें जब्त करके गरीब किसानों समेत खेत मजदूरों तक सबको समान नजर से देखते हुए जमीनें बांटेंगे। किसान एक ऐसा शब्द बना दिया गया है जिसमें धनी किसान (कुलक/फार्मर) से लेकर खेत मजदूर तक सब कुछ समा जाता है। लेनिन बार–बार हिदायतें देते हैं कि ग्रामीण सर्वहारा को स्वतंत्र वर्गीय संगठन में संगठित करना चाहिए, लेकिन हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी यह करना तो दूर इस नजरिये से विश्लेषण करना भी आवश्यक नहीं मानते। वे गरीब किसानों के एक प्रवर्ग में छोटे किसान, सीमांत किसान (अर्द्ध सर्वहारा), खेत मजदूरों सबको शामिल कर देते हैं। आइये देखें :

'' ... वे अधिकाधिक संख्या में जमीन से बेदखल हो रहे हैं जिससे भूमिहीन किसानों तथा खेतीहर मजदूरों की संख्या बढ़ रही है जो कि ***किसान जनता*** का बड़ा हिस्सा हैं। दूसरी ओर किसान जनता की कीमत पर मुट्ठीभर जमींदार तथा धनी किसानों का एक हिस्सा फल–फूल रहे हैं...।'' (कार्यक्रम, रास्ता, संविधान, **CPI (ML)** न्यू डेमोक्रेसी की पार्टी कांग्रेस द्वारा पारित, **2004**, पृष्ठ.**1–8**, शब्दों पर जोर हमारा)

यहां भूमिहीन किसान और खेत मजदूर दोनों ही किसान जनता बन जा रहे हैं। आइये और देखें :

'' उत्पीड़ित जातियों के लोग ज्यादातर गरीब किसान और खेतीहर मजदूर (भूमिहीन किसान) हैं जो सामंती शोषण और उत्पीड़न का शिकार हैं।'' (नीतिगत प्रस्ताव, **CPI (ML)** न्यू डेमोक्रेसी की पार्टी कांग्रेस, **2004**, पृष्ठ.**9**)

यहां पर और अन्य कई जगहों पर खेतिहर मजदूर और भूमिहीन किसान को एक दूसरे में गड्ड–मड्ड किया गया है। माओ का भूमिहीन किसान खेत मजदूर से एकदम अलग गरीब किसान प्रवर्ग का हिस्सा था और गरीब किसान प्रवर्ग को माओ साफतौर पर चीनी देहात का अ(–सर्वहारा चिर्हित करते थे।

आइये देखें **CPI** (माओवादी) क्या कहती है–

''भूमिहीन और गरीब किसान–

आमतौर से ***खेतिहर मजदूरों समेत भूमिहीन किसानों*** के पास अपनी भूमि या अपने कृषि औजार नहीं होते। उन्हें या तो पूरी तरह या मुख्यतः अपनी श्रम शक्ति बेचकर अपना गुजर–बसर करना पड़ता है ...''

''...***ये*** ग्रामीण आबादी के **65–70** प्रतिशत हैं। भारतीय समाज में मौजूद सभी वर्गों में से गरीब और भूमिहीन किसान मुख्य प्रेरक शक्ति हैं और सर्वहारा वर्ग के सबसे दृढ़ संश्रयकारी हैं।

(भारतीय क्रांति की रणनीति और कार्यनीति, **CPI** (माओवादी), पृष्ठ.**30**, शब्दों पर जोर हमारा)

यहां भूमिहीन और गरीब किसान के प्रवर्ग में खेत मजदूरों को शामिल कर दिया गया है। इसके अलावा छोटा किसान जैसा प्रवर्ग इनके वर्गीकरण में कहीं है ही नहीं। शायद इन्हें भारत के देहातों में ऐसे किसान दिखाई ही नहीं देते जो अपनी थोड़ी सी जमीनों पर बिना

उजरती श्रम का उपयोग किये जैसे–तैसे अपनी गुजर–बसर कर रहे हैं। कृषि कार्यों से सम्ब(एक बड़े वर्ग को गायब कर देना और अन्य वर्गों का घालमेल के साथ वर्णन करना लेनिन और माओ का तरीका नहीं है।

भारत के देहातों में छोटा किसान कौन है और उनकी तादाद कितनी है, इस पर बात करने से पहले आइये देखें लेनिन और माओ छोटे किसान को कैसे व्याख्यायित करते हैं :

''तीसरा, छोटा किसान समुदाय, याने छोटे काश्तकार, जो या तो खुद ऐसी छोटी जोतों के मालिक होते हैं या लगान पर ऐसी थोड़ी सी जमीन लेते हैं, जिनसे वे अपने परिवारों तथा अपने फार्मों की जरूरतें पूरी करते हैं और बाहरी श्रम को उजरत पर नहीं रखते। इस श्रेणी को श्रेणी के नाते सर्वहारा की विजय से असंदिग्ध रूप से लाभ होता है, जो उसे पूरी तरह और तुरन्त ये चीजें प्रदान करती हैः (क) बड़े जमींदारों को लगान या फसल का एक हिस्सा चुकाने की आवश्यकता से मुक्ति (उदाहरण के लिए फ्रांस में और साथ ही इटली तथा अन्य देशों में **Metayers,** बंटाईदार), (ख) बंधक ट्टणों से मुक्ति, (ग) बड़े जमींदारों द्वारा उत्पीड़न, उन पर निर्भरता के बहुसंख्या रूपों से मुक्ति (वन्य भूमि, उसका उपयोग आदि), (घ) सर्वहारा राज्य सत्ता की ओर से उनके फार्मों को तत्काल सहायता (खेती के औजारों तथा सर्वहारा वर्ग द्वारा जब्त किये गये बड़े पूंजीवादी फार्मों पर इमारतों के एक भाग का उपयोग, देहाती सहकारी सोसायटियों और कृषि एसोसियेशनों का ऐसे संगठनों से, जो पूंजीवाद के अंतर्गत सर्वाधिक अमीर और मझोले किसानों की सेवा करते थे, सर्वहारा राज्यसत्ता द्वारा ऐसे संगठनों में तत्काल रूपान्तरण जो प्रथमतया गरीबों यानी सर्वहाराओं, अ(–सर्वहाराओं, छोटे किसानों, आदि की सहायता करेंगे), तथा अन्य बहुत सी चीजें।

(लेनिन, कृषि प्रश्न पर थीसिसों का आरम्भिक मसविदा, संकलित रचनायें चार खण्डों में, खण्ड– **4** पृष्ठ–**130,** प्रगति प्रकाशन)

चीनी समाज में वर्गों का विश्लेषण करते समय माओ निम्न पूंजीपति वर्ग में भूमिधर–किसान, मालिक–दस्तकार और छोटे बुद्विजीवियों तथा छोटे व्यापारियों को शामिल करते हैं। फिर वे निम्न पूंजीपति वर्ग की तीन श्रेणियां स्पष्ट तौर पर बताते हैं। इसकी तीसरी सबसे निचली श्रेणी के बारे में वे लिखते है :

''तीसरी श्रेणी में वे लोग हैं जिनका जीवन स्तर गिरता जा रहा है। इस भाग में बहुतों की, जो पहले कुछ समृद्व खानदानों में से थे, हालत धीरे–धीरे यहां तक पहुंच गयी है कि वे ***महज गुजारा भर कर सकते हैं*** और उनका जीवन स्तर दिन–पर दिन गिरता जा रहा है। हर साल के अंत में हिसाब–किताब करने पर उन्हें बड़ा सदमा पहुंचता है और वे आह भरकर कहते हैं, ''हाय, फिर घाटा!'' चूंकि इन लोगों ने अच्छे दिन देखे हैं और अब हर साल उनकी हालत गिरती जा रही है, कर्ज का बोझ बढ़ता जाता है और जिंदगी दिन–पर–दिन दूभर होती जाती है, इसलिए उन्हें ''भविष्य का ध्यान आते ही कंपकंपी छूटने लगती है''। मानसिक रूप से वे बहुत परेशान रहते हैं, क्योंकि उनके अतीत और वर्तमान में इतना अंतर हो गया है। क्रांतिकारी आंदोलन में ऐसे लोग काफी महत्वपूर्ण होते हैं। इस जन–समूह की संख्या कम नहीं है और ये निम्न–पूंजीपति वर्ग का वाम–पक्ष हैं। ...''

(माओ, चीनी समाज में वर्गों का विश्लेषण, संकलित रचनायें, ग्रंथ–**1,** विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, पृष्ठ–**8–9)**

यह है लेनिन और माओ का तरीका। अलग–अलग देशों की परिस्थितियों के अनुसार इसमें थोड़ा–बहुत फर्क हो सकता है लेकिन तब भी मूल बातें यही रहेंगी। आज के ग्रामीण भारत में कृषि कार्यों से सम्बद्व आबादी को हम यदि इस दृष्टिकोण से देखें तो हमें दिखाई देगा कि, कृषि कार्यों में कुल लगे हुए **23-4** करोड़ कामगारों में से **10-7** करोड़ खेतिहर सर्वहारा हैं, **5** करोड़ अर्द्व सर्वहारा हैं (सीमांत किसान), इनके पास नाममात्र को जमीनें हैं, जीवन निर्वाह के लिए ये मुख्यतः अपनी श्रमशक्ति बेचते हैं। इनके बाद **6** करोड़ किसान हैं, इनमें से **1.5 -2** करोड़ किसान ऐसे हैं जिन्हें हम मझोला किसान कह सकते हैं, ये ग्रामीण भारत के अपेक्षाकृत खुशहाल लोग हैं इनके पास इतनी जमीनें तथा जीवन निर्वाह के साधन हैं जिनसे इनका गुजारा साल भर हो जाता है। जरूरत पड़ने पर ये कभी–कभार भाड़े पर मजदूर भी लगाते हैं। किसानों में शेष **4 - 4.5** करोड़ किसान ऐसे हैं जिन्हें हम छोटा किसान कह सकते हैं। इनके पास जमीनों व अन्य संसाधनों की बस इतनी ही मात्रा होती है कि ये बमुश्किल गुजर–बसर ही कर पाते हैं। इनके ऊपर कर्जों का बोझ लदा रहता है। आज से मुख्यतः बाजार तंत्र के जरिये पूंजीपति वर्ग के अन्य हिस्सों द्वारा लूटे जा रहे हैं। कृषि क्षेत्र से सम्बद्व कुल कामगारों में शेष **1.7 - 2** करोड़ धनी किसान व फार्मर हैं। यह ग्रामीण भारत का शासक और शोषक वर्ग है। ग्रामीण मेहनतकशों का संघर्ष मुख्यतः इन्हीं के खिलाफ केन्द्रित है। यह ग्रामीण भारत की एक अति संक्षिप्त तस्वीर है। जिसे हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संज्ञान में नहीं लेते।

आगे हम देखेंगे कि छोटे किसानों की तबाही बर्बादी कैसे और क्यों हो रही है और इस बारे में अन्य कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठनों का क्या कहना है। हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी समझते हैं कि छोटे–मझोले किसानों की तबाही का मुख्य कारण जमींदारों द्वारा वसूला जाने वाला भारी लगान, सूदखोरी तथा उदारीकरण– वैश्वीकरण की नीतियां है। आइये इसकी कुछ मिसाल देखें :

''... भूमिहीन व गरीब किसानों को अपने वार्षिक उत्पादन का **50%** या अधिक हिस्सा जमींदारों को देना पड़ता है। सूदखोर पूंजी द्वारा किसानों का खून चूसना जारी है जबकि किसानों पर महाजनों, बैंकों व कोआपरेटिव संस्थाओं के कर्ज बढ़ते जा रहे हैं। किसानों की जमीन से बेदखली रोजमर्रा की घटना है ...।''

[CPI (ML) न्यूडेमोक्रेसी का कार्यक्रम, **2004,** पृष्ठ **1-7]**

'' ... ऐसे किसानों की तादाद बढ़ रही है जो कि कर्ज अदा न कर सकने और जीविका अर्जित न कर पाने के कारण आत्महत्या के लिए मजबूर हो रहे हैं ... किसानों पर कर्ज काफी तेजी से बढ़ा है। कर्ज की तुच्छ रकम के एवज में किसानों की गिरफ्रतारी की जा रही है और उनकी अचल सम्पत्ति कुर्क की जा रही है। ...लगभग आधे किसान परिवार कर्ज में डूबे हैं।''**[CPI (ML)** न्यू डेमोक्रेसी, अन्तर्राष्ट्रीय व राष्ट्रीय परिस्थिति और हमारे कार्य, जुलाई **2005,** पृष्ठ–**35-36,**

''नई आर्थिक नीतियों ने किसानों पर विशेष आघात किया है। खेती में लागत– बिजली, खाद और नये बीजों के दाम कई गुना बढ़ गये हैं जबकि इसकी तुलना में कृषि उत्पादों के दाम बहुत कम हैं। यह स्थिति गरीब और मझोले किसानों के लिए अत्यधिक दुष्कर है'' **[CPI (ML)** न्यूडेमोक्रेसी राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति तथा हमारे कार्य, **1996,** पृष्ठ **-25]**

इन्हीं सवालों पर **CPI (ML)** जन शक्ति का क्या कहना है, देखिये :

'' ... भूमि काश्तकारी के अर्द्व–सामंती ढांचे, बड़ी जमीनों का मालिकाना, असुरक्षित काश्तकारी, लूट–खसोट भरे भू–लगान, बंटाईदारी, बंधुआ मजदूरी और भूखे, अधनंगे तथा फटेहाल ग्रामीण बेरोजगारों की फौज, ग्रामीण भारत की एक तस्वीर देती है।''...

[CPI (ML) Janshakti, On the National situation, Page-24, अनुवाद हमारा**,**

इस बारे में **CPI** (माओवादी) का कहना है :

''देहातों में अभी अर्द्व–सामंती शोषण के चरम रूप बरकरार हैं। अर्द्व–सामंती शोषण के इन प्रमुख रूपों में हैं– आधी फसल तक को हड़प ले जाने वाली बंटाईदारी की प्रथा, बंधुआ मजदूरी, सूदखोर तथा महाजनी पूंजी और आर्थिक से इतर उत्पीड़न के अन्य प्रकार, जैसे– ब्राहमणवादी जाति–व्यवस्था जो उत्पीड़ित लोगों, खासकर दलितों से ज्यादा से ज्यादा अधिशेष का दोहन करने में भारी महत्व रखती है। ...'' **[CPI** (माओवादी), देश की घरेलू परिस्थिति, राजनीतिक प्रस्ताव, नौवीं कांग्रेस के दस्तावेज, जनवरी **2007** पृष्ठ– **67,**

''भारत में सामंती शोषण का एक दूसरा भयावह पहलू महाजनी शोषण है, जो किसानों से सूद के रूप में एक विशाल राशि निचोड़ लेता है। निजी सूदखोरों के साथ–साथ विभिन्न बैंक और वित्तीय कंपनियां भी किसानों का शोषण करती हैं। इस प्रकार ग्रामीण ट्टण ग्रस्तता छलांग लगाकर बढ़ रही है।'' **[CPI** (माओवादी), भारतीय क्रांति की रणनीति और कार्यनीति, जनवरी–**2007,** पृष्ठ.**19,**

''...बैंक के कारोबार में किये गये सुधारों के तहत प्राथमिकता के क्षेत्र में दिये जाने वाले कर्ज में कटौती के कारण किसान, खासकर गरीब किसान और मध्यम किसान भी आज पहले से कहीं ज्यादा निजी सूदखोरों के रहमोकरम पर हैं। आम किसानों को अपना **65** प्रतिशत तक कर्जा लुटेरे व्यापारियों समेत इन्हीं सूदखोरों से लेना पड़ रहा है।''...

[CPI (माओवादी),राजनीतिक प्रस्ताव, नौवीं कांग्रेस, पृष्ठ **-68]**

'' ... हाल में बड़ी–बड़ी व्यावसायिक कंपनियां किसानों को लाखों की तादाद में विस्थापित करते हुए उनकी खेती की जमीन को बड़े पैमाने पर कब्जा करती पायी जा रही हैं। कृषि–व्यवसाय संघ, फसल की विविधता की लम्बी चौड़ी बातें और गरीब किसानों की मदद करने के नाम पर ठेके पर खेती का शुरुआत गरीब किसानों को और मध्यम किसानों के एक 'तबके' को बर्बादी की ओर ले जाने के सिवा और कुछ भी नहीं हैं।''... **(** वही,पृष्ठ **-69)**

छोटे–मझोले और गरीब किसानों की दुर्दशा को हमारे साथी सामंतवाद से जोड़ते हैं, ये मानकर चलते हैं कि पूंजीवाद में छोटे किसानों की दुर्दशा नहीं होती। भू लगान को ये इस तरह बढ़ा–चढ़ा कर पेश करते हैं मानो लगान और सामंतवाद एक ही बात हो। जबकि लगान पूंजीवाद में भी मौजूद रहती है। भारत के बारे में आज सच यह है कि कुल कृषि भूमि के **9/10** भाग तथा प्रचालित भू–जोतों के **7/8** भाग **(NSS, 48th round, Report No-407)** पर कृषि कार्य भू स्वामी या तो स्वयं करते हैं या उजरती मजदूरों से करवाते हैं। इसमें इस बात की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता कि **वे** द्वारा जारी ये आंकड़े बहुत सटीक स्थिति का बयान न करते हों और किरायेदारी इससे अधिक मौजूद हो लेकिन तब भी ये आंकड़े भारतीय कृषि में किसी प्रवृत्ति की ओर इशारा तो करते ही हैं। शेष जमीनों के बारे में हमें विपरीत किरायेदारी **(Reverse tenancy)** को ध्यान में रखना चाहिए। आज खुदकाश्त जब इतने बड़े स्तर पर मौजूद है तो छोटे किसानों की बर्बादी को भू–लगान से जोड़ने का क्या अर्थ है।

दूसरे, कम्युनिस्ट क्रांतिकारी संगठन यह मानकर चलते हैं कि सूदखोर पूंजी पूंजीवाद में नहीं होती। ये साथी, सूदखोर पूंजी के परजीवी चरित्र का बखूबी वर्णन करते हुए उसे सामंतवाद की चीज घोषित कर देते हैं। यह सही है कि छोटे–मझोले किसानों की ट्टणग्रस्तता बढ़ी है, लेकिन क्या यह पूंजीवाद में नहीं होता। सूदखोर पूंजी की मौजूदगी पूंजीवाद में बनी रहती है और यह पूंजीवाद के रहते समाप्त नहीं हो सकती। सूदखोर पूंजी की मौजूदगी से ज्यादा महत्वपूर्ण बात हमारे लिए यह होनी चाहिए कि यह पूंजी समाज में क्या भूमिका अदा कर रही है। यह किसानों के बीच विभेदीकरण को बढ़ा रही है या नहीं। दूसरे यह पूंजी ग्रामीण औद्योगिक पूंजी से स्वतंत्र है अथवा उसके साथ सम्बद्व यानी जो ट्टण इन किसानों द्वारा लिये जा रहे हैं वे कहां खर्च किये जा रहे हैं। इन ट्टणों का इस्तेमाल यदि खेती में किये जा रहे औद्योगिक उत्पादों की खरीद में खर्च हो रहा है तो यह सूदखोर पूंजी औद्योगिक पूंजी से सम्बद्व होगी और कृषि में पूंजीवादी विकास को आगे बढ़ायेगी। हम इस तथ्य से इंकार नहीं करते हैं कि इन ट्टणों का इस्तेमाल छोटे उत्पादक पारिवारिक खर्चों के लिए भी करते हैं। ये बातें गहन छानबीन की मांग करती हैं। इन सवालों पर कोई बात किये बिना वे इसे सामंतवाद का लक्षण घोषित कर देते हैं। मार्क्स फ्रांस के छोटे–छोटे किसानों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं :

''अतएव जिस मात्रा में आबादी और उसके साथ भूमि का बंटवारा बढ़ता है, उसी मात्रा में ***उत्पादन का औजार–खेत महंगा होता जाता है, उसकी उर्वरता*** घटती जाती है, ***कृषि का ह्रास होता जाता है तथा किसान के सिर पर कर्ज का बोझ लदता जाता है।*** और जो वस्तु परिणाम थी, वह अपनी बारी में कारण बन जाती है। हर पीढ़ी अपनी अगली पीढ़ी पर और ज्यादा कर्ज लाद जाती है, हर नई पीढ़ी और अधिक प्रतिकूल, अधिक तीक्ष्ण परिस्थितियों के अंतर्गत काम शुरू करती है, एक बंधक ट्टण दूसरे बंधक ट्टण को जन्म देता है, और जब किसान के लिए ***नये कर्ज*** हासिल करने के वास्ते अपनी छोटी जोत को रेहन रखना सम्भव नहीं रह जाता, यानी फिर से बंधक रखना सम्भव नहीं होता, वह सीधे ***सूदखोरों*** के चंगुल में फंस जाता है और ***सूद की दरें*** हद से ज्यादा बढ़ जाती हैं...।

''जनतंत्र ने जब फ्रांसीसी किसानों के सिर पर पुराने बोझ के साथ नये बोझ भी लाद दिये तो उनकी क्या हालत हुई होगी, इसे आसानी से समझा जा सकता है। यह देखा जा सकता है कि उनका शोषण औद्योगिक सर्वहारा से केवल ***स्वरूप*** में ही भिन्न है। शोषक वही है यानी ***पूंजी***। निजी तौर पर पूंजीपति ***बंधकों*** और ***सूदखोरी*** के जरिये किसानों का शोषण करते हैं, पूंजीपति वर्ग ***राजकीय करों*** के जरिये कृषक वर्ग का शोषण करता है। ...'' (मार्क्स, फ्रांस में वर्ग संघर्ष, संकलित रचनाएं, खण्ड **.1ए** भाग **–1,** पृष्ठ **.341–343,** जोर मूल में**)**

इस तरह हम देख सकते हैं कि पूंजीवाद के रहते छोटे–मझोले किसान सूदखोरी से मुक्त नहीं हो सकते। ट्टणग्रस्तता, कंगाली, दरिद्रता पूंजीवाद में छोटे उत्पादकों की नियति है। इसे सामंतवाद का ही लक्षण मानना पूंजीवाद के शोषणकारी चरित्र पर पर्दा डालने के सिवा और कुछ नहीं है।

नव जनवादी क्रांति की लाइन को मानने वाले कुछ साथी तो छोटे उत्पादकों की मौजूदगी को ही पूंजीवाद पूर्व की चीज घोषित कर देते हैं। आइये देखें :

''मालों का साधारण परिचलन– खरीदने के लिए बेचना– एक ऐसे कार्य को करने का साधन है जो परिचलन से असम्बद्व है यानी उपयोग मूल्यों का हस्तगतकरण है, आवश्यकताओं की संतुष्टि है। इसके विपरीत पूंजी के रूप में मुद्रा का परिचलन अपने आप में एक उद्देश्य है, क्योंकि मूल्य का प्रसार इसके भीतर सिर्फ निरंतर पुनर्नवीनीकृत गति (**Renewed Movement**) के साथ होता है। इसमें पहले वाला प्राक्–पूंजीवादी उत्पादन पद्वति का, जबकि बाद वाला पूंजीवादी उत्पादन पद्वति का संकेत है। प्राचीन काल से मोची बाजार के लिए उत्पादन करता रहा है जबकि वह पूंजीपति नहीं है। आज के अधिकांश छोटे–मध्यम किसानों की तरह वह सिर्फ अपनी खुद की आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए ही बेचता है।'' **(**Arvind, the theoritical basis to understand class relations in transition in Agriculture, Semi Feudal India and Impact of Globalisation, Radical Publication, KOLKATA, Page-11**,** अनुवाद हमारा**)**

और आगे :

''इस तथ्य के अलावा कि कृषि के संकट के कारण (आक्रामक साम्राज्यवादी नीतियों के परिणामस्वरूप) आज के अधिकांश परिवार ही दीवालियेपन की स्थिति में हैं, यह निर्धारित करने की आवश्यकता है कि ऐसे माल–विनिमय के जरिये किस हद तक अतिरिक्त मूल्य पैदा किया जाता है अथवा किस हद तक यह महज बुनियादी आवश्यकताओं को ही पूरा करता है। बढ़ता हुआ माल विनिमय यदि पूंजी के संचय के साथ जुड़ा हुआ नहीं है, तो इसका परिणाम साधारण माल उत्पादन होता है न कि पूंजीवाद।''

(वही, पृष्ठ**–13)**

इन बातों का आशय यह है कि साधारण माल उत्पादन पूंजीवाद में नहीं होता है और ये बातें छोटे–मझोले किसानों के बारे में की जा रही हैं। इनके हिसाब से छोटे उत्पादक चूंकि पूंजी का संचय नहीं करते इसलिए यह साधारण माल उत्पादन है और यह प्राक् पूंजीवादी चीज है। लेकिन यदि ये छोटे उत्पादक ऐसा करने ही लगें तो ये छोटे उत्पादक रहेंगे क्यों? इनके हिसाब से पूंजीवाद में केवल पूंजीपति और मजदूर ही होते हैं, छोटे उत्पादक नहीं। ऐसा पूंजीवाद अब तक तो दुनिया में कहीं आया नहीं है।

छोटे मझोले किसानों की हालत आज खराब होती जा रही है। नव जनवादी क्रांति की लाइन को मानने वाले साथी इसका कारण अर्द्व–सामंती उत्पादन सम्बंध मानते हैं। साथ ही वे महंगी होती कृषि आगतों और कम दामों में कृषि उत्पादों की बिक्री को भी इसका कारण मानते हैं। उनका मानना है कि दूसरा कारण उदारीकरण– वैश्वीकरण की नीतियों के कारण है। इस तरह वे छोटे उत्पादकों की वर्तमान तबाही के लिए इन नीतियों को भी जिम्मेदार मानते हैं। जबकि हकीकत ऐसी नहीं है। छोटे उत्पादकों की वर्तमान तबाही के लिए भारतीय कृषि क्षेत्र में सक्रिय दीर्घकालिक कारक मूलतः जिम्मेदार हैं। उदारीकरण–वैश्वीकरण की नीतियों के कारण यह संकट तीव्र हुआ है और छोटे उत्पादकों की तबाही–बर्बादी को इन्होंने त्वरित भी किया है। छोटे मझोले किसानों की तबाही का कारण मूलतः पूंजीवाद है, सामंतवाद नहीं। पूंजीवाद में छोटे उत्पादकों की तबाही अपरिहार्य है। लेनिन लिखते हैं :

> ''... मुद्रा की सत्ता ने उस फ्रांसीसी किसान को भी कुचल दिया, जो सामंत भू–स्वामियों की सत्ता से किये गये किसी दयनीय सुधार द्वारा नहीं बल्कि एक शक्तिशाली लोकप्रिय क्रांति द्वारा मुक्त हुआ था– मुद्रा की इस सत्ता ने हमारे अर्द्व–दास मुझिक द्वकिसान) को अपने पूरे वजन के साथ बेध डाला। उपकारी सुधारों के परिणामस्वरूप बढ़े हुए कर चुकाने के लिए, कारखानों में बने चंद छोटे–मोटे ऐसे सामानों की खरीदारी के लिए– जो किसानों के घरों में बने सामानों को किनारे धकेल रहे थे, गल्ला खरीदने आदि कामों के लिए– उसे किसी भी कीमत पर मुद्रा प्राप्त करनी ही थी। मुद्रा की सत्ता ने किसान समुदाय को कुचला ही नहीं उसे विभाजित भी किया। किसानों की भारी आबादी निरंतर बरबाद हो रही थी और सर्वहारा में बदलती जा रही थी। एक छोटी आबादी के बीच में से लोलुप कुलकों और उद्यमी मुझिकों का एक छोटा समूह पैदा हुआ जिसने किसान फार्मों और किसान की जमीन को हथिया लिया और उभरते हुए ग्रामीण पूंजीपति वर्ग का मुख्य हिस्सा बन गया। किसानों के गैर–किसानीकरण' की यह सतत प्रक्रिया, धीमी और पीड़ादायी विनाश की यह प्रक्रिया सुधार के बाद के चालीस वर्षों की विशिष्टता रही है। किसान भिखारियों की स्थिति में पहुंच गया। घास–पात पर गुजारा करते हुए, चिथड़ों में लिपटा हुआ, वह अपने मवेशियों के साथ रहता था, यदि कहीं भी जाने की जगह थी तो वह अपना एलॉटमेंट छोड़कर भाग जाता था और यहां तक की यदि वह किसी को जमीन का एक टुकड़ा देने के लिए राजी कर पाता था तो उससे मुक्त होने के लिए कीमत तक चुकाता था क्योंकि इस जमीन के लिए किया जाने वाला कर–भुगतान उससे पैदा की गयी आय से अधिक होता था। किसान लम्बी भुखमरी के शिकार थे और अकाल एवं बुरी फसल के वर्षों में होने वाली महामारी के प्रकोपों से, जिनकी बारम्बारता लगातार बढ़ती जा रही थी, दसियों हजार की संख्या में मौत की भेंट चढ़ जाते थे''। **(** लेनिन, मजदूर पार्टी और किसान,**Collected Works,** खण्ड**.4,** पृष्ठ–**422.423,** अनुवाद हमारा**)**

यह है पूंजीवाद के अंतर्गत छोटे किसानों की नियति। इस वक्त भारत में और क्या हो रहा है भला यह सामंतवाद कैसे है। आज उदारीकरण–वैश्वीकरण की नीतियों की वजह से यह प्रक्रिया त्वरित हो गयी है। आज छोटे किसान मूलतः बाजार तंत्र के जरिये ही धनी किसानों/ फार्मरों और पूंजीपतियों के द्वारा लूटे जा रहे हैं। साम्राज्यवादी अगर अपनी नीतियों को कृषि क्षेत्र में आगे बढ़ा रहे हैं तो इन्हीं ग्रामीण शोषकों के जरिये। धनी किसान और फार्मरों के हित आज साम्राज्यवादी व्यवस्था से एकाकार हो चुके हैं। लेकिन हमारे देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी वस्तुतः इन्हीं शोषक वर्गों के पिछलग्गू बने हुए हैं।

देश में जहां कहीं भी किसान आंदोलित हो रहे हैं, वे मुख्यतः कृषि आगतों में कमी तथा न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाने की मांगों को लेकर आंदोलित होते हैं। ये आंदोलन भी मुख्यतः धनी किसानों/फार्मरों के आंदोलन होते हैं। धनी किसानों के विपरीत छोटे किसान अपने उत्पादों को बेचने के लिए कीमतें चढ़ने का इंतजार नहीं कर सकते, अपनी तात्कालिक जरूरतों के लिए के अक्सर ही बिचौलियों के जरिये अपनी उपज बेचने के लिए मजबूर होते हैं। कृषि आगतों में बढ़ते खर्च के लिए वे ट्टण लेते हैं और उपज की उचित कीमत न मिल पाने के कारण कर्ज के बोझ तले दब जाते हैं। आज देश के पैमाने पर किसानों द्वारा हो रही आत्महत्यायें मुख्यतः छोटे–मझोले किसान ही कर रहे हैं। देश में नई आर्थिक नीतियों के लागू होने से छोटी किसानी का यह संकट काफी बढ़ गया है। देश के कृषि बाजारों के विदेशी बाजारों से जुड़ते जाने के साथ ही छोटे–मझोले किसान ऐसे दुष्चक्र में फंस जाते हैं जिससे पूंजीवाद में बचने का कोई रास्ता नहीं है। छोटे उत्पादकों की तबाही–बर्बादी की इस प्रक्रिया को अर्द्व सामंती व्यवस्था से जोड़ने से केवल इन किसानों की मुक्ति के कार्य को ये साथी स्वयं टाल रहे हैं।

II

लेख के इस हिस्से में हम समाजवादी क्रांति की लाइन को मानने वाली दो धाराओं की बातों को लेंगे। इनमें पहली धारा वह है जो पिछले पच्चीस सालों से अब तक यह मानती रही है कि भारत मूलतः एक पूंजीवादी देश है, कि यहां पर पूंजी और श्रम के बीच का अंतरर्विरोध प्रधान अंतरर्विरोध बन चुका है, कि यह अंतरर्विरोध पूंजीवाद विरोधी समाजवादी क्रांति के जरिये ही हल हो सकता है। इनका यह भी मानना रहा है कि भारतीय कृषि में पूंजीवादी उत्पादन सम्बंध प्रधान बन चुके हैं, हालांकि सामंती अवशेष भी समाज में मौजूद हैं। आज इन्हें पुनः सामंतवाद से भारतीय जनता का अंतरर्विरोध बुनियादी अंतरर्विरोध लगने लगा है। पहले इनका मानना था कि उपरोक्त अंतरर्विरोध अपनी बुनियादी अंतरर्विरोध की हैसियत खोकर प्रमुख अंतरर्विरोध की श्रेणी में चला गया है। खैर, अभी हमारा मकसद इन सभी मामलों की चीर फाड़ करना नहीं है, अभी हम अपनी बातों को 'किसान समस्या' तक सीमित रखेंगे। पिछले कुछ समय से ये साथी किसानों के बीच राजनीतिक गतिविधियां कर रहे हैं। देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी किसानों के बीच काम करें, उन्हें संगठित करने का प्रयास करें, उन्हें सम्बोधित पत्र–पत्रिकाएं निकालें यह तो उचित ही है। लेकिन कम्युनिस्ट क्रांतिकारी किसानों के बीच काम सदैव सर्वहारा दृष्टिकोण पर खड़े होकर ही करेंगे। लेकिन इन साथियों ने सर्वहारा दृष्टिकोण को त्यागकर किसानों के दृष्टिकोण से ढेरों बातें करनी शुरू की हैं। यहां तक कि ये अपनी पुरानी और सही समझदारी को भी छोड़ने लगे हैं। कृषि संकट और छोटे–मझोले किसानों की बर्बादी का कारण ये भूमि सम्बंधों में खोज रहे हैं। इनका कहना है कि हमारी खेती–बाड़ी के विकास की सबसे बड़ी बाधा वर्तमान भूमि संबंध हैं, अतः भारत की खेती–बाड़ी के विकास की पहली शर्त है– खेती करने वालों, खेती में मेहनत करने वालों का जमीन पर मालिकाना। इनके हिसाब से ऐसे कुछ ही इलाके हैं जहां मुख्यतः भूमि के मालिकाने की समस्या नहीं रह गई है, लेकिन पूरे देश के पैमाने पर खेती के विकास की एक महत्त्वपूर्ण शर्त है– भूमि सम्बंधों में परिवर्तन। पच्चीस सालों के बाद इन कामरेडों ने एक बार फिर 'जमीन जोतने वाले की' नारा बुलंद कर दिया है। इन कामरेडों की याददाश्त ठीक नहीं लग रही है। चलिए हम याद दिला देते हैं। पच्चीस साल पहले यह कह रहे थे –

> ''पूंजी आज कृषि को अपने अधीन कर चुकी है, मध्ययुगीन सामंती पितृसत्तात्मक प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के एक–एक रन्ध्र को यह बेध चुकी है, उसे खोखला बना चुकी है, छिन्न–भिन्न कर चुकी है और अपने अधीन ले चुकी है। राज्य के सचेतन प्रयासों के अतिरिक्त अन्य हजार तरीकों से पूंजी चुपचाप, बिना किसी शोरगुल के, अपने लिए आवश्यक रूपों को जन्म देती रही है और देती जा रही है। भारतीय कृषि राष्ट्रीय मण्डी का ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय मण्डी का भी अंग बन चुकी है, इसके चढ़ाव–उतार हमेशा भारतीय कृषि और किसानों को झकझोरते रहे हैं। आज, भारतीय अर्थव्यवस्था का संकट सामंती ठहराव के कारण नहीं, पूंजीवादी आर्थिक संकट के कारण है। यह पूंजीवादी संकट है।''... **[**लाल तारा**-2,** भारत की कम्युनिस्ट लीग (मा.ले.) का मुखपत्र, पृष्ठ–**194, 1983]**

जिन भूमि सम्बंधों को आप सारी तबाही की जड़ बता रहे हैं उसके बारे में **1987** में आप कह रहे थे :

''सामंती भूमि सम्बंधों के अवशेष भी देश के विभिन्न हिस्सों में मौजूद हैं पर वे निरंतर ''समान हैं और बुनियादी अंतरर्विरोध के दायरे से बाहर विस्थापित हो चुके हैं।'' **[**लाल तारा– **3,** भारत की कम्युनिस्ट लीग (मा.ले.) का मुखपत्र पृष्ठ– **184, 1987]**

पिछले बीस सालों में भारतीय कृषि में जारी पूंजीवादी विकास के चलते जब इन्हीं सामंती अवशेषों की उपस्थिति और कम हुई है तब आप पुनः सामंतवाद और व्यापक जनता के अंतरर्विरोध को बुनियादी बताने लगे हैं। हद तो अब यह हो गयी है कि आप पश्चिम बंगाल में हुए आधे–अधूरे भूमि सुधारों को पूरे देश के लिए मॉडल के बतौर प्रस्तुत करने लगे हैं और इसके लिए मजदूर वर्ग के गद्दारों की शान में कसीदे पढ़ने लगे हैं। वर्तमान कृषि संकट और उसमें छोटे मझोले किसानों की बर्बादी के समय भूमि वितरण की भूमिका को बढ़ा–चढ़ाकर पेश करना पूंजीवादी व्यवस्था में छोटी किसानी की अनिवार्य तबाही के सत्य पर पर्दा डालना ही है। इस बारे में लेनिन कहते हैं :

'' हम किसानों से– देहात के सर्वहाराओं तथा अर्द्ध सर्वहाराओं से तो और भी कम– यह नहीं छुपा सकते हैं कि माल अर्थव्यवस्था तथा पूंजीवाद के बरकरार रहते छोटे पैमाने की खेती मानवजाति को जनव्यापी दरिद्रता से छुटकारा ***नहीं दिला सकती,*** कि राजकीय खर्चे पर बड़े पैमाने की खेती में संक्रमण पर ***विचार करना*** तथा इस तरह के संक्रमण के लिए व्यावहारिक रूप से उचित कार्यकलाप जनसाधारण को सिखाते हुए ***और जन साधारण से सीखते हुए इस काम का तत्काल बीड़ा उठाना जरूरी है।***'

(लेनिन, किसान प्रतिनिधियों की कांग्रेस, संकलित रचनाएं, दस खण्डों में, खण्ड**-6,** पृष्ठ**-407,** जोर मूल में)

लेनिन साफ तौर पर कह रहे हैं कि माल अर्थव्यवस्था तथा पूंजीवाद के रहते किसानी का संकट समाप्त नहीं हो सकता, यह समाजवाद में ही संभव है। पर हमारे ये कामरेड समाजवाद कायम करने के लिए पूंजीवाद के खिलाफ निर्णायक जंग की तैयारी तो दूर शेखचिल्ली की भांति तरह–तरह के मंसूबे बांध रहे हैं। मसलन देश के अरबपतियों की दौलत का एक छोटा हिस्सा किसानों की आत्महत्याएं रोक सकता है या केरल, प. बंगाल और त्रिपुरा की वामपंथी सरकारें मिलकर इन आत्महत्याओं को रोक सकती हैं अथवा पंजाब, पश्चिमी उत्तर प्रदेश और तराई के खाते–पीते किसान भी अगर प्रयास करें तो ये आत्महत्याएं बंद हो जायेंगी। मुक्त चिंतन की उड़ान भरते–भरते ये साथी अब वहां पहुंच रहे है जहां ये भूल गये हैं कि यह पूंजीवाद है और पूंजीवाद में इन छोटे किसानों को बचाने की आस किससे है? मजदूर वर्ग के गद्दारों और खाते पीते किसानों (? वर्ग शत्रुओं) से!

आजकल हमारे ये कामरेड एम.एस. स्वामीनाथन की पैनी दृष्टि पर भी फिदा है। स्वमीनाथन की प्रशंसा में ये कहते हैं कि देश के जाने माने कृषि अर्थशास्त्री और हरित क्रांति के पितामह एम.एस. स्वामीनाथन खेती के पिछड़ेपन को भूमि समस्या के साथ जोड़कर देखते हैं। उनका कहना है कि भूमि समस्या आज भी बनी हुयी है और उसका समाधान होना चाहिए। तभी हम अपनी खेती–बाड़ी को दुनिया में उन्नत देशों की बराबरी पर ले जा सकते हैं। स्वामीनाथन की शान में ये आगे फरमाते हैं कि भारत में मौजूदा एशियाई उत्पादन प्रणाली और वर्णजाति समस्या भूमि सम्बन्धों को काफी जटिल बना देते हैं। वे उस पर एक ऐसा पर्दा डाल देते हैं जिसे बहुत पैनी दृष्टि ही छेदकर देख सकती है। एम.एस. स्वामीनाथन ऐसी ही पैनी दृष्टि रखते हैं और उसे देख पाने में सक्षम हैं। कामरेडों की इन बातों से इतना तो साफ है कि इनकी अपनी वर्ग दृष्टि काफी धुंधली हो चुकी है। स्वामीनाथन नेशनल फार्मर्स कमीशन के अध्यक्ष थे। इनकी अध्यक्षता में गठित इस आयोग ने कृषि संकट के समाधान के लिए 'सदाबहार हरित क्रांति' का रास्ता सुझाया। इस आयोग की सिफारिशों पर केन्द्र सरकार ने राष्ट्रीय कृषि नीति घोषित की है। इनकी सिफारिशों के अनुसार छोटे किसानों को बचाने के लिए सरकार को कृषि आगतों की आपूर्ति सुनिश्चित करनी चाहिए। कृषि उत्पादों की खरीद की व्यवस्था सरकार करे, किसानों को परम्परागत खेती के बदले वैविध्यीकृत खेती की ओर उन्मुख किया जाये, इसके अलावा इनकी सिफारिशों में सिंचाई और भू–गर्भ जल के सही इस्तेमाल और मृदा–संरक्षण इत्यादि के बारे में ढेरों बातें की गई हैं। एम.एस.स्वामीनाथन जैसे बुर्जुआ बुद्विजीवी ऐसे तमाम सुधारवादी तौर–तरीके बता सकते हैं। यह कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों का काम है कि वे इन सुधारवादी तौर–तरीकों में छिपे हुए वर्गीय हितों को बेपर्दा करें और इनके द्वारा फैलाये जा रहे विभ्रमों को दूर करें। यहां यह ध्यान रखने की जरूरत है कि यदि बुर्जुआ सत्ता इन सुधारों को लागू भी कर दे तब भी इसका असल फायदा धनी किसानों और फार्मरों को ही होगा।

खेती के वर्तमान संकट के समय सरकार ठेका खेती और कारपोरेट खेती को बढ़ावा देने का काम कर रही है। इसमें यह तो साफ ही होना चाहिए कि यह सब देशी–विदेशी पूंजी अपने मुनाफे को और बढ़ाने के लिए कर रही है। ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां किसानों से उनके ही खेतों में ठेके पर खेती कराएंगी। ऐसे में छोटे किसानों को बचाने के लिए इन कामरेडों ने एम.एस.स्वामीनाथन के सुझाव पर एक नायाब रास्ता सुझाया है। इनके अनुसार देश के सिंचित–असिंचित दोनों इलाकों में छोटे किसानों की जमीनों को लेकर विशेष कृषि क्षेत्र (एस.ए.जेड.) बनाये जायें। इससे छोटे खेतों के प्रबंध को बेहतर बनाया जा सकता है क्योंकि ऐसे इलाकों में किसानों को खेती से जुड़ी विभिन्न जानकारियां, सस्ते ट्टण, सामूहिक बीमा इत्यादि और सुनिश्चित बाजार तथा फसल के अच्छे दाम मिल सकेंगे। ये कामरेड समझते हैं कि इससे एस.ए.जेड. छोटी खेती की उत्पादकता बढ़ायेगा, उसे लाभकारी बनायेगा। ये साथी छोटे किसानों को पूंजीवाद विरोधी क्रांति में सर्वहारा के दृढ़ संश्रयकारी के बतौर संगठित करने के बजाय, उन्हें पूंजीवादी व्यवस्था के भीतर अच्छे भविष्य के दिवास्वप्न दिखा रहे हैं।

आइये, अब समाजवादी क्रांति की लाइन को मानने वाली एक अन्य धारा की बात करें जो भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर के विघटन की घोषण कर चुकी है। 'सर्वहारा पुनर्जागरण और प्रबोधन' के काम में लगे ये कामरेड भी छोटे किसानों के बारे में उलझाव के शिकार हैं। ये एक तरफ तो छोटे किसानों की तात्कालिक मांगों के समर्थन में खड़े होने की बात करते हैं और दूसरी तरफ लाभकारी मूल्य की मांग अथवा उत्पादन लागत घटाने की मांगों को प्रतिक्रियावादी घोषित कर देते हैं। इनके हिसाब से ये सभी मांगें गांव के गरीबों की शोषक और पूरे देश के मेहनतकशों के शोषण की साझीदार, धनी किसानों की मांगें हैं। इनके अनुसार एक कम्युनिस्ट छोटे–मझोले मालिक किसानों को लाभकारी मूल्य के आंदोलन के साथ खड़ा होने का सुझाव नहीं दे सकता। छोटे मझोले किसानों की इन तात्कालिक मांगों के लिए होने वाले आंदोलनों में कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को इनका साथ क्यों नहीं देना चाहिए? इसका जवाब ये इस प्रकार देते हैं, कि इससे उनकी अन्ततोगत्वा तबाही का निश्चित भविष्य और आगे खिसक जायेगा, उन्हें थोड़ी राहत मिल जायेगी और उनके भ्रम की उम्र थोड़ी और बढ़ जायेगी। तब उन्हें पूंजीवाद के बारे में जो उन्हें पशुवत जीवन के सिवा और कुछ नहीं दे सकता, समझा पाना और दुश्वार हो जायेगा। छोटे किसानों को पूंजीवाद की मार से राहत देने के लिए तो आप इनके साथ लड़ेंगे नहीं, तब फिर आप बिना इनके संघर्षों में साथ खड़े हुए इन्हें संगठित कैसे करेंगे। जवाब है– छोटे किसानों को पूंजीवाद में उनकी अनिवार्य तबाही–बर्बादी की दलीलें देकर पूंजीवाद को 'एक्सपोज' करेंगे यानी केवल जुबानी जमाखर्च करेंगे। हमारे ये कामरेड समझते हैं कि ये दलीलें सुनकर छोटे किसान सर्वहारा के साथ आ खड़े होंगे। अपने शेख चिल्लीपन में ये कामरेड भूल गये हैं कि कोई भी वर्ग क्रांति में अपने विशिष्ट वर्गीय हितों के चलते ही शामिल होता है। अपनी वर्गीय मांगों को छोड़कर दूसरे वर्ग की लड़ाई में कोई यूं ही नहीं कूद पड़ता। तब आखिर ये कामरेड किन तात्कालिक मांगों की लड़ाई में छोटे किसानों के साथ खड़े होंगे? ये कहते हैं कि सभी परोक्ष करों की मंसूखी, डेयरी–पोल्ट्री–फिशरी व तमाम कृषि आधारित उद्यमों पर आयकर लगाना, निजी पारिवारिक खर्चों के लिए अत्यंत कम ब्याज दर पर ट्टण, रियायती राशन, मुफ्रत और अनिवार्य शिक्षा, रोजगार, निःशुल्क चिकित्सा, सभी के लिए आवास इत्यादि मांगों पर इन किसानों को संगठित किया जायेगा। इनके द्वारा गिनाई गई

ज्यादातर मांगें ऐसी हैं जो आम नागरिक आबादी की मांगें भी बनती हैं इनमे छोटे–मझोले किसानों की विशिष्ट वर्गीय मांगें एक भी नहीं हैं। जिन कारणों से उसे छोटा किसान कहा जाता है उस विशिष्ट मामले में कोई बात नहीं क्योंकि वह तो पहले ही इनके द्वारा प्रतिक्रियावादी कदम घोषित किया जा चुका है। इसके अलावा एक बात और कि इनके द्वारा गिनाई गई मांगें भी तो इसी पूंजीवाद में छोटे किसानों की कुछ जरूरतों को तो पूरा करेंगी ही, कुछ राहत तो देंगी ही, तब फिर इनसे पूंजीवाद में अपनी अनिवार्य नियति के बारे में भ्रम की उम्र क्यों नहीं बढ़ जायेगी? इससे आपके लिए पूंजीवाद का चरित्र समझा पाने में दुश्वारी क्यों नहीं हो जायेगी?

ये कामरेड सोचते हैं कि छोटे किसानों को पूंजीवाद के भीतर अपनी हालत को बेहतर बनाने के लिए संघर्ष नहीं करना चाहिए। सर्वहारा वर्ग को छोटे किसानों की वर्गीय मांगों के संघर्ष के साथ नहीं आना चाहिए, उसे केवल उनकी अपरिहार्य बर्बादी की दलीलें देकर अपने पक्ष में खड़ा करने की कोशिश करनी चाहिए। ये कामरेड छोटे किसानों की जिन विशिष्ट मांगों को प्रतिक्रियावादी घोषित कर देते हैं, उनके सम्बन्ध में हम इतना ही कहना चाहेंगे कि, छोटे किसान भारतीय क्रांति के करीबी भरोसेमंद मित्र हैं। इनके बीच हमारे राजनीतिक प्रचार का मुख्य बिन्दु यही है कि समाजवादी समाज में सामूहिकीकरण में ही इनकी मुक्ति है। इस नारे को केन्द्र में रखते हुए हमें इनको तात्कालिक राहत पहुंचाने के लिए कृषि लागतों को कम करने तथा लाभकारी मूल्य के लिए होने वाले विभिन्न संघर्षों का समर्थन करना चाहिए। इन संघर्षों में सक्रिय हिस्सेदारी कर समांग मांगों की जगह छोटे किसानों के फायदे में पक्षपाती तथा वर्गीकृत मांगें उठाकर हमें उन्हें सर्वहारा विचारधारा के करीब लाने का प्रयास करना चाहिए। कम्युनिस्ट क्रांतिकारी यदि पक्षपाती या वर्गीय मांगें न उठाकर समांग मांगें उठायेंगे तो व्यवहारतः वे छोटे किसानों को धनी किसानों और फार्मरों का पिछलग्गू बना रहे होंगे। इसके बजाय कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को ये मांगें छोटे व मध्यम किसानों को ध्यान में रखते हुए उठानी चाहिए। कृषि की लागतों पर सब्सिडी की समाप्ति तथा समर्थन मूल्य प्रणाली के निष्प्रभावी होने से इन किसानों की तबाही बहुत तेज हो गयी है। कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को ये मांगें इस तरह उठानी चाहिए ताकि इसका वास्तविक फायदा छोटे–मध्यम किसानों को प्राप्त हो, धनी किसानों व फार्मरों को नहीं। ऐसा करके ही वे छोटे व मध्यम किसानों को धनी किसानों के नेतृत्व से निकाल कर उन्हें अपने साथ लाकर, क्रांति के साथ खड़ा कर सकते हैं। छोटे किसानों के इन संघर्षों के साथ खड़े होकर हमें उन्हें यह बताना चाहिए कि छोटी किसानी की बर्बादी पूंजीवाद में अपरिहार्य है, कि छोटी किसानी को बरकरार रखना पूंजीवाद में संभव नहीं है।

अंत में, सर्वहारा वर्ग के महान शिक्षक एंगेल्स की सलाह कि सर्वहारा पार्टी का छोटे किसानों के बारे मे क्या रुख होना चाहिए :

'' तब फिर छोटे किसानों के प्रति हमारा क्या रुख हो? सत्तारूढ़ होने के दिन हमें उनके साथ किस तरह पेश आना होगा?

'' पहले, फ्रांसीसी कार्यक्रम का निम्नांकित कथन बिल्कुल सही है : हम पहले से जानते हैं कि छोटे किसानों का विनाश अवश्यमभावी है, पर हमारा यह काम नही कि अपनी ओर से किसी तरह का हस्तक्षेप करके उस दिन को नजदीक लायें।

दूसरे, यह भी उतना ही स्पष्ट है कि जब हमारे हाथों में राज्य सत्ता आयेगी, तब हम बलपूर्वक छोटे किसानों की सम्पत्ति (बामुआवजा या बिला मुआवजा) छीनने की– जो काम हमें बड़े जमींदारों के मामले में करना पड़ेगा– बात भी नहीं सोचेंगे। छोटे किसानों के सम्बंध में हमारा कार्य प्रथमतः उनके निजी उद्यम और निजी स्वामित्व को सहकारी उद्यम और स्वामित्व में अंतरित करना होगा, और यह बलपूर्वक नहीं, बल्कि उदाहरण पेश करके तथा सामाजिक सहायता देकर किया जायेगा। कहने की जरूरत नहीं की उस समय छोटे किसानों को ऐसे भावी लाभ, जो उन्हें आज भी स्पष्ट होंगे, दिखाने के हमारे पास प्रचुर साधन होंगे।''...

''छोटी जोत वाले किसानों को हम न तो आज और न ही भविष्य में कभी यह आश्वासन दे सकते हैं कि पूंजीवादी उत्पादन की प्रचण्ड शक्ति से उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति और उनके व्यक्तिगत उद्यम की रक्षा की जा सकती है। हम उन्हें इतना ही आश्वासन दे सकते हैं कि हम बलपूर्वक, उनकी इच्छा के विरुद्व, उनके स्वामित्व सम्बंधों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। इसके अलावा हम इस बात की हिमायत कर सकते हैं कि आइन्दा छोटे किसानों के विरुद्व पूंजीपतियों और बड़े जमींदारों का संघर्ष अनुचित साधनों का कम से कम इस्तेमाल करते हुए चले और सीधे–सीधे की जाने वाली लूट–खसोट और ठगी, जो आजकल धड़ल्ले से चलती है, जहां तक सम्भव हो, बंद हो जाये। अपने इस आग्रह में हम कुछ ही मामलों में, जो अपवाद स्वरूप ही होगें, सफल हो सकते हैं। विकसित पूंजीवादी उत्पादन पद्वति में यह कोई भी नहीं बता सकता कि ईमानदारी और ठगी की सीमा रेखा कहां पर है। पर इससे अवश्य बहुत बड़ा फर्क पड़ेगा कि राजनीतिक सत्ता किस के पक्ष में है– ठगे जाने वालों के पक्ष में, या ठगने वालों के पक्ष में। कहने की जरूरत नहीं कि हम निश्चित रूप में छोटे किसान के पक्ष में हैं, उसकी हालत को अधिक सह्य बनाने के लिए, यदि वह सहकारी रूप से खेती करने का निर्णय करता है, तो उसके लिए यह संक्रमण सहज और सुविधापूर्ण बनाने के लिए, यहां तक कि ऐसा निर्णय करने में उसके असमर्थ होने की सूरत में उसे इस मामले में गौर करने का वक्त देने के ख्याल से उसे एक लम्बे अरसे तक अपनी जोत पर काबिज रहने देने के लिए भी वह सब कुछ करेंगे जो सम्भव है। हम यह सिर्फ इसलिए नहीं करेंगे कि छोटे किसान को जो अपना काम आप करता है, हम कार्यतः अपना समझते हैं, बल्कि इसलिए भी कि यह पार्टी के प्रत्यक्ष हित में है। ***सर्वहारा की पांतों में जबरन ढकेले जाने से हम जितने ही अधिक किसानों को बचा सकें, जितने अधिक को किसान रहते हुए ही हम अपनी ओर कर सकें, उतनी ही जल्दी और आसानी से सामाजिक कायापलट सम्पन्न होगा।*** इस कायापलट को तब तक टालने से, जब तक कि पूंजीवादी उत्पादन सर्वत्र अपनी चरम परिणति पर न पहुंच जाये और हर छोटा दस्तकार और ***हर छोटा किसान बड़े पैमाने के पूंजीवादी उत्पादन का शिकार न बन जाये, हमारा कोई हित साधन नहीं होगा।''...***

''अतः ऐसे वादे करने से, जैसे कि यह कि हम छोटी जोत को स्थायी रूप से बरकरार रखना चाहते हैं, हम पार्टी का और छोटे किसानों का और बड़ा अहित नहीं कर सकते। ऐसा करने का मतलब सीधे–सीधे किसानों की मुक्ति का मार्ग अवरुद्व कर देना और पार्टी को हुल्लड़बाज यहूदी विरोधियों के निम्न स्तर पर ले आना होगा। इसके विपरीत, हमारी पार्टी का यह कर्त्तव्य है कि किसानों को बारम्बार स्पष्टता के साथ जताये कि ***पूंजीवाद का बोलबाला रहते हुए उनकी स्थिति पूर्णतया निराशापूर्ण है, कि उनकी छोटी जोतों को इस रूप में बरकरार रखना एकदम असम्भव है, कि बड़े पैमाने का पूंजीवादी उत्पादन उनके छोटे उत्पादन की अशक्त, जीर्ण–शीर्ण प्रणाली को उसी तरह कुचल देगा, जिस तरह रेलगाड़ी ठेलागाड़ी को कुचल देती है।*** ऐसा करके हम आर्थिक विकास की अनिवार्य प्रवृत्ति के अनुरूप कार्य करेंगे। और यह विकास एक न एक दिन छोटे किसानों के मन में हमारी बात को बैठाये बिना नहीं रह सकता।'' (एंगेल्स, फ्रांस और जर्मनी में किसानों का सवाल, मार्क्स–एंगेल्स की संकलित रचनायें, खण्ड–**3,** भाग **.2,** प्रगति प्रकाशन, पृष्ठ **381**–**.385,** शब्दों पर जोर हमारा)

....